प्रकाशक
नवयुग-ग्रन्थ-कुटीर
पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता,
बीकानेर

मूल्य डेढ़ रुपया
१०००
प्रथम बार
८-१-१९४१.

मुद्रक
सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस,
बीकानेर

दो बातें

कवि, तुम कहाँ जा रहे हो ?—इस जिज्ञासा का उत्तर चिरकाल से दिया जा रहा है। व्यास-वाल्मीकि, होमर और वर्जिल, कालिदास और भवभूति, तुलसीदास और सूरदास, शेक्सपियर और मिल्टन आदि महामनीषी कवि-गण शत-शत कंठ से इस प्रश्न के समाधान मे लगे रहे हैं। उन्होंने नाना स्वर और लिपियो मे, विविध छन्द और लय मे, इस अतृप्त उत्सुकता की परितृप्ति की चेष्टा की है। अपने हृदय को उन्होने बूंद-बूंद करके निचोड़ दिया है। उपमाओ, रूपकों और उत्प्रेक्षाओ मे उन्होने कहने से क्या छोड़ा है ? परन्तु क्या वे कह सके है ? क्या वह सनातन जिज्ञासा आज भी ज्यो की त्यों नही बनी हुई है ? सच पूछो तो वैदिक मानव का यह प्रश्न कि कवि, तुम कहाॅ जा रहे हो ? बीसवी शताब्दी के मानव का भी प्रश्न है। हम जहाॅ-तहाॅ अवसर मिलते ही पूछ उठते है—कवि, तुम कहाॅ जा रहे हो ? रवीन्द्रनाथ 'गीतांजली' लाकर हमारे सामने रख देते हैं। पन्त, 'प्रसाद', 'निराला' और महादेवी मे से कोई छायावाद ले आता है, कोई रहस्यवाद—कोई कुछ, कोई कुछ। यथा-शक्य सब कुछ प्रस्तुत करके वे इस चिरन्तन समस्या का उत्तर देने की चेष्टा ही तो करते हैं। हालावाद और

प्रगतिवाद भी अपने अपने ढंग से कवि की प्रगति को बताना चाहते है। सच तो यह है, कि इसे खोल कर नहीं रक्खा जा सकता और यदि कवि इसे खोल कर रख सके तो वह कवि ही न रहे। सारा साहित्य, समस्त शिल्प कलाकार के इसी प्रयत्न से पवित्र, अनुप्राणित और रमणीय है। अजन्ता और इलोरा के चित्र-शिल्प मे हृदय की इसी उड़ान को अंकित किया गया है। ज्यो ज्यो कवि अपने को स्पष्ट करने को चला है त्यो त्यो वह अस्पष्ट होता गया है। उसकी वाणी उसी क्रम से दूरागत संगीत की क्षीण स्वर-लहरी का रूप धारण करती गई है। इसीलिए कवि और कलाकार के सामने श्रद्धा से वारवार सिर झुकाकर भी लोक-हृदय उसके साथ पग मिला कर अधिक दूर चल नहीं पाया। लोक-जीवन के लिये कवि कवि ही रह गया है, और रह जाना ही कवि और काव्य एवं लोक-जीवन सवके लिए ठीक हुआ है।

आज हम अलोचना प्रत्यालोचना करके उस पुरातन प्रश्न का समाधान पा लेना चाहते हैं। प्रत्येक कवि की शैली मे किसी न किसी वाद की स्थापना करके हम कवि की अभिव्यक्ति पर भाष्य प्रस्तुत करते हैं और अपनी समझ से कवि और काव्य के लक्ष्य को पा लेना चाहते है। हमारा समालोचक अपनी ओर से काव्य की नई से नई परिभाषाएँ करता है। अवतक की अपूर्णताओ के ऊपर तैर कर वह उस रहस्य को अनावृत कर देना चाहता

है जो स्वयं कवि के द्वारा नहीं हो सकता है। अपने बुद्धि और हृदय के योग से वह खूब गहरे उतर जाता है और एक-एक तार को हिलाकर कवि के मनोनीत आदर्श को खोज करता है। परन्तु समस्त जानकारी के बाद भी कुछ अज्ञात और अगोचर रह जाता है। जो अगोचर के साथ अनिर्वच भी है। वही साहित्य, शिल्प और कला का प्राण है। वह अनुभवगम्य तो है अभिव्यक्तिगम्य नहीं है। अथवा यों कहे कि ज्यों ज्यो अभिव्यक्ति विस्तृत होती जाती है त्यो-त्यों वह सूक्ष्मतर होता जाता है। वह मनुष्य के अन्तकरण को आनन्द की मन्दाकिनी मे स्नान करा सकता है; एक रसस्रोत को जन्म दे सकता है। उसी को लक्ष्य करके एक स्थान पर 'प्रेमी' ने कहा है कि मेरा और कविता का बरसो का साथ है पर मैं उसे जानने का दावा नहीं कर सकता। लोक हृदय काव्य को पढ़कर रोज गद्‌गद् होता है। कवि नई नई रचनाएँ देकर अपने को धन्य समझता है पर—कवि तुम कहाँ जा रहे हो ?—यह प्रश्न सदा होठो पर रक्खा ही रहता है। यही चिरकाल से आस्वादन किये जानेवाले काव्य-रस को विरस नहीं होने देता।

प्रस्तुत रचना और और औचित्य दूसरी रचनाओ का रहस्य यही है। इसी प्रश्न के उत्तर स्वरूप अच्छी-बुरी समस्त रचनाएँ हैं। मेरी इस 'नीहारिका' मे कुहरे का धुंधलापन ही विशेष है, सृष्टि और प्रकाश का यदि आभासमात्र इस

मे मिल जाय, तो लेखनी, कागज और मसि सभी सार्थक हुए, ऐसा समझूंगा । यह नीर-क्षीर-विवेक पाठको पर है । मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैने अपनी ओर से कृपणता नही की । रंक की झोली से जितनी निधि की आशा की जा सकती है वह उदारतापूर्वक लुटा डालने पर मै तो कृपणता के दोष से मुक्त होगया ।

इस अकिंचन प्रयास के पीछे मित्रो और पूज्यों के जो प्रोत्साहन और आशीर्वाद हैं वे ही इसे पाठको के सामने ला रहे है । यदि इसमे कुछ उन्हे ऐसा मिल सके जो कवि के सतत प्रयास मे एक कणतक वन सकने की योग्यता रखता हो, तो इसका श्रेय उन्ही की शुभेच्छाओं को है ।

कुटीर बीकनेर सकसेना

दीपावली, १९४१

सूची

समर्पण

ढुलका लो तुम मुझे बनाकर
वक्षस्थल पर आँसु।
पान मान कर अधर रचा लो
मेरे प्रणय पिपासु।

हार मान कर डाल गले में
रक्खो कंपित बाँहें।
शैया का उपकरण बना लो
चुनकर मेरी आहें।

मेरा क्या, तन मन सब कुछ ही
तो है नाथ तुम्हारा।
अर्घ्य-बिन्दु के लिए भला
संकोच-भाव यह सारा।

नीहारिका

आह्वान

जैसे आता है उज्ज्वल शशि
जैसे आते हैं तारे
उसी तरह तुम भी आजाओ
मेरे प्राणों के प्यारे

प्रबल चाह के झोंके में उड़
आओ मेरे श्यामल घन
अपने आच्छादन से भर दो
सूना मेरा हृदय-गगन

मेरे स्वप्नों के शिल्पी, आओ
मेरी निद्रा के संग
जागृति के छवि-मन्दिर में भर
जाओ तनिक सुनहले रंग

आलिंगन को बढ़े हुए इन
हाथो को छूने आओ
वेणी को कंधे पर मेरी
आकर तुम लहरा जाओ

अपनी विधुर कहानी कहने को
आतुर है सजल नयन
शरमा जाओ झलक दिखाकर
उन्हें हमारे जीवनधन !

नियमो के कठोर प्रतिपालक !
नियमों को तज कर आओ
मेरे देव, समय के सहचर !
असमय में ही आजाओ

ऐ मेरे असवर्ण ! वर्ण का
आने में मत करो विचार
भावुक मेरे ! प्रणय-जगत में
सभी हो रहा एकाकार ।

जीवन के अवकाश मनोहर
बंधन हरने को आओ
पर प्रकृति का मोह-जाल तुम
अपने साथ लिये आओ

चारण का गीत

भाई रण को चला, बहिन !
तुम रक्षा-बंधन लाओ तो ।
हँस-हँस तिलक करो, जब जाये
गीत विजय के गाओ तो ।

और चले जाने पर बनकर
देश-सेविका धाओ तो ।
पग-पग पर आहत वीरों पर
करुणाजल बरसाओ तो ।

रज्जुहीन है पोत, वीर है
संकट में—सुन पाओ तो ।
रेशम से केशों को अपने
लेकर रज्जु बनाओ तो ।

निकल-निकल कर सरसिज-नयनी
सुकुमारी सब जाओ तो
पैरों में छाले पड़ते हों
किन्तु न तुम घबड़ाओ तो

आलिंगन को बढ़े हुए इन
हाथों को छूने आओ
वेणी को कंधे पर मेरी
आकर तुम लहरा जाओ

अपनी विधुर कहानी कहने को
आतुर है सजल नयन
शरमा जाओ झलक दिखाकर
उन्हें हमारे जीवनधन !

नियमों के कठोर प्रतिपालक !
नियमों को तज कर आओ
मेरे देव, समय के सहचर !
असमय में ही आजाओ

ऐ मेरे प्रसवर्ण ! वर्ण का
आने में मत करो विचार
भावुक मेरे ! प्रणय-जगत में
सभी हो रहा एकाकार ।

जीवन के अवकाश मनोहर
बंधन हरने को आओ
पर प्रवृत्ति का मोह-जाल तुम
अपने साथ लिये आओ

चारण का गीत

भाई रण को चला, बहिन !
तुम रक्षा-बंधन लाओ तो ।
हँस-हँस तिलक करो, जब जाये
गीत विजय के गाओ तो ।

और चले जाने पर बनकर
देश-सेविका धाओ तो ।
पग-पग पर आहत वीरों पर
करुणाजल बरसाओ तो ।

रज्जुहीन है पोत, वीर है
संकट में—सुन पाओ तो ।
रेशम से केशों को अपने
लेकर रज्जु बनाओ तो ।

निकल-निकल कर सरसिज-नयनी
सुकुमारी सब जाओ तो
पैरों में छाले पड़ते हों
किन्तु न तुम घबड़ाओ तो

प्रेमतीर्थ

चूर-चूर होगया जहां
सरिता का एक किनारा ।
वही बही थी कभी हमारे
पूत प्रेम की धारा ।

जहां कलश लेकर कुलवधुए
भरने आती पानी ।
पनघट की ईंटों पर अंकित
है वह प्रेमकहानी ।

कन्याओं के रुनुक-झुनुक
करते कंकण रस-भीने ।
वहीं प्रेम का प्याला लेकर
बैठे थे हम पीने ।

हराभरा था यह रसाल जो
सूखा ठूंठ खड़ा है ।
तरु उकसा था नहीं कि जो
यौवन से आज जड़ा है ।

उधर एक वानीर-कुंज था
लता-वितान इधर था ।
उस झुरमुट के आसपास ही
कहीं प्रिया का घर था ।

इस खँडहर में एक क्षुद्र-सा
मंदिर और शिखर था ।
नीम और पीपल की छाया में
छाया छप्पर था ।

फूलों की डाली लेकर,
लेकर पूजा की थाली ।
यहीं कहीं से आती जाती
थी वह मंजु मराली ।

देवी का वरदान यहीं पर
प्राणप्रिया ने पाया ।
मैंने भी वरदान-तुल्य था
उसे यहीं अपनाया ।

गोपद-चिन्हित मार्ग, दूब
से हरी-भरी यह धरती ।
उन असंख्य स्मृतियों को मेरे
उर अंतर में भरती ।

मेरे प्रेमतीर्थ के कण-कण
में है कसक पुरानी।
जिसकी मधुर टीस से भरतीं
आँखें अविरल पानी।

मातृभूमि की याद में

अग्रज अनुज जहां बसते
सुख-दुख की चादर ताने ,
बरसा करते जहा डाल से
पिक-कपोत के गाने ।

पथ की ओर लगे रहते
दो आशापूरित लोचन ।
धूप-छांह ले जहा विचरते
अम्बर में श्यामल घन ।

सरिताएँ कलकल बहती हैं
झर-झर झरते झरने ।
जहा झुण्ड के झुण्ड निकलकर
चलते हैं पशु चरने ।

जहां कृपकबालाएँ लेकर
हंसिया गाती जाती ।
कन्याएं कोमल हाथो से
हंसहंस खेत निराती ।

योद्धाओं ने रक्त बहा कर
जहाँ रणस्थल सींचे,
मन अटका है उड़ चलने को
उसी गगन के नीचे।

किन्तु हाय, बन्दीगृह की ये
तुंग सुदृढ़ दीवारें।
और निठुर निर्मम घातक की
मर्मभेदिनी मारें।

चिता चुने बैठी है, अवतब
की है एक प्रतीक्षा।
यहीं आज निश्चय जीवन की
होगी अन्तिम दीक्षा।

तो हे काग! उठा ले चलना
चुनचुन हाड़ हमारे।
और पवन तुम बहना देखो
राख चिता की धारे।

वहीं छोड़ना, जहाँ शून्य में
खोलें अमित झरोखे।
घर हो मेरा खड़ा रंक-सा
लेकर भाव अनोखे।

जिज्ञासा

हृदय-सुमन की माला लेकर
भक्ति-भाव से आऊं ।
सचमुच क्या तव नाथ ! आपकी
प्रिय दासी कहलाऊं ?

वशीकरण का मन्त्र मोहनी
जागृत करूं विजन में,
मनमोहन को प्रेम-विमोहित
तो क्या पाऊं मन में ?

तपोभवन में शान्तिरत्न की
मणिमय अञ्जलि लेकर,
क्या कृतकृत्य करोगे प्रियतम,
तव निज दर्शन देकर ?

श्वासों को संयत करने से,
क्या परदा सरकाकर,
मुझे बजाते हुए मुरलिया,
शीघ्र मिलोगे आकर ?

नयन मूंद नीचे निकुंज के
देख साधना साधे,
बाहु-पाश में भरकर क्या तुम
बोल उठोगे 'राधे'।

आशाओं का मन्दिर था

आशाओं का मन्दिर था,
चूड़ा थी नभ को छूती।
उच्चता कल्पना ही से,
जिसकी जाती थी कूती।

कामना-झरोखे अगणित
सब ओर दृष्टि थे फेरे।
प्राणों के दीपक झलमल
थे हर्ष-पवन के प्रेरे।

देवता प्रेम का भीतर,
वरदान लिए जिह्वा पर!
सैनो से बुला रहा था,
इंगित कर दिन भर निशि भर!

पूजा में हृदय चढ़े थे
आंसू का अर्घ्य बना था!
उत्सुकता की वेदी पर
प्रार्थना-वितान तना था!

अंबरचुंबी वह ऊंचा,
वह कलश इन्दु का धारे।
गिरकर निज आकृति खोकर
अब स्मृति के रहा सहारे।

खंडहर में उसके डाला
नैराश्य-निशा में डेरा।
बरसेंगी कभी मयूखें,
होगा क्या कभी सवेरा।

युग का परिवर्तन होगा
मन्वन्तर का दिन होगा।
मेरा वह अभिनव मन्दिर
भी होगा या कि न होगा?

बचपन

सब कुछ भूला, किन्तु नहीं मैं
उस बचपन को भूला।
डाली-डाली में था जिसकी
पड़ा मोद का झूला।

ऊँची-नीची पैंग बढ़ी थी
अमित उमंगो वाली।
इधर उधर सब ओर बिछी थी
मन की दूब निराली।

क्रीड़ा का उद्यान हमारा
आशाओं की डोरी।
सावन की वे मधुर मलारें
मां की प्यारी लोरी।

बात बात में आंखों का
वर्षोत्सव मंजु मनाना।
मचल मचल कर नर्तन करना
ठुनक ठुनक कुछ गाना।

सुख का ताना, दुख का बाना
बुन-बुन जी बहलाना।
प्यार-दुलार भरे हाथों की
मीठी थपकी पाना।

साझ पड़े सो जाना
उठकर दूध-भात ही खाना।
तन में धूल लपेटे फिरना
बातों में तुतलाना।

कर कर भूल भूल जाना
पाना उसमें भिड़ जाना
बचपन की उस सरल याद में
है अनमोल खजाना।

निवेदन

घन सा और गगन सा प्रियतम
मुझे उठालो पास।
जग की शल्य सेज पर मेरा,
घुटता है निश्वास।

क्षण क्षण के बन्धन में बन्दी
हैं ये आकुल प्राण।
बरसा दो इनके ऊपर प्रिय!
मंजु मधुर मुसकान।

तारों को चरणों में तुमने
दिया देव! विश्राम।
आज अकिंचन की अंजलि को
मिले वही श्रीधाम।

है मृगांक गृहदीपक उस पर
अमित तुम्हारा प्यार।
वहीं बन सकूं ला दो जी में
मेरे यह सुविचार।

पवनदेव परिचारक हैं तव
मन्दिर के हे नाथ !
पीछे-पीछे कहो कि आऊं
मैं भी उनके साथ।

तन-मन शौर्य-विभव की है
अब कहाँ भूख या प्यास।
अब तो अटक रही है केवल
एक तुम्हीं में आस।

शेष अभिलाष

आता हूँ पर नाथ! साथ
अभिलाष लिये आता हूँ।
श्रीचरणों में यही एक
अवशेष विनय लाता हूँ।

जन्मूँ किसी रूप में फिर
तो यही रम्य भूतल हो।
यही ग्राम्य-जीवन, सरिता का
यही मधुर कलकल हो।

यही स्वजन हो, यही सखा हों
यही मित्र हों प्यारे।
यहीं हितैषी, यही बन्धु हों
यहीं कुटुम्बी सारे।

पशु-पक्षी हों यही, यही
टूटाफूटा सा घर हो।
हरेभरे हो खेत यही,
गहरा नीला सरवर हो।

यही मनोहर अरुणोदय हो
यही सांझ की लाली।
यही सुनहले दिन हों मेरे
यही निशा हो काली।

तना वितान-तुल्य यह प्यारा
विस्तृत नीलाम्बर हो।
शीतल मन्द सुगन्ध प्रवाहित
यही वायु सुन्दर हो।

इसका पक्र-कीट भी होना
मेरे मन भाता हो।
उड़ते हुए वायु में इसके
कण कण से नाता हो।

फिर फिर जन्मूं-मरूं पुन पर
रहूं न इससे न्यारा।
इसी देश में राजवेश से
रंक रूप हो प्यारा।

वे यदि आयें

मलयपवन बनकर आयें वे
प्राणों की अमराई में।
तो पिक बनकर कूक उठूंगी
उनकी मुदित बधाई में।

यदि आने ही लगें प्राणधन
मेरे घर वसन्त होकर
तो उनका सत्कार करूंगी
फूलो का विलास बनकर।

घनश्याम बनकर छायें वे
जो मेरे पुर-अम्बर में
उनके स्नेह सलिल को भरकर
लूंगी तो उर-अन्तर में।

कर को किशलय कर लूंगी मैं
तुहिन-विन्दु यदि हों प्रियतम
सजनि, रजनि में आना चाहें
तो मैं बन जाऊंगी तम।

खलिहान के गीत पर

पथिक! न होने दो पद-ध्वनि से
उसकी नीरवता भंग।
भरने दो अपनी तरंग में
उसके मन का रंग।

धान पक गये पर है कच्चा
उसका हृदय अबोध।
देखो, कहीं न मिल पाये कुछ
उसे तुम्हारा शोध।

अजाना है भोलीभाली
उठा रही खलिहान
तान-तान में लुटा रही वह
मीठे-मीठे गान।

कैसी कसक, मर्म-पीड़ा भी
कैसी मृदु मनुहार।
भरती रोम रोम में कैसा
है वह सुखद खुमार।

कल्पालय की मर्म-कथा सा
उपत्यका का राग
लौट लौट कर, गूँज-गूँज कर
इहराता अनुराग ।

शत शत भावों में व्यञ्जित हैं
कृषक-सुता के शब्द ।
अन्वित वर्तमान में करते
कितने विगत शताब्द ।

गायन का है विषय मनोरम
सुख दुख का संसार ।
पद पद पर चित्रित होते है,
नारी-नर, गृह-द्वार ।

अहो पथिकवर, शैल-शृंग से
अचल रहो गह मौन
अभिनव स्वर लहरी-निर्भर में
है न कहो सुख कौन ?

प्रेम की याद में

फूलो को चुन लिया न जाने
मन-मधुवन से किसने ?
रातों को रच लिया सुनहले
लेकर अपने सपने ।

मेरे दर्पण की परछाँई
चुरा लेगया कोई ।
कहाँ गई अरमान-आरती
मेरी हाय सँजोई ?

कज गगनगंगा का मेरी
मधुमय मञ्जु सलोना
सुरभित करने गया कहां
किस हृदय-देश का कोना ?

किस वागुर की मृगी बन गई
मेरे सुख की शाला
किन चरणों पर लोटेगी हा !
मेरी वह वरमाला ?

छवि जो झलक उठी थी मेरी
अलस भरी पलकों में
पारिजात की कलिया थी जो
इन मेचक अलको में

वे कमनीय रेशमी मेरी
शोभा की वर किरणें,
किन नयनो की पुतली में हा !
गई थिरक कर तिरने ।

कौन करेगा दूर अराजकता
इस मेरे जग की ।
उस बरजोर चोर से रक्षा
होगी क्योंकर भग की ?

उनका आना

सखि, आते ही रहे किन्तु वे
आये कभी न मेरे घर ।
यह कैसा आना है उनका
कैसा है उनका अन्तर !

रह जाना निर्माल्य अछूता
सुमुखि, सजाई थाली का
किन्तु न आना हो पाना उन
प्राणोपम वनमाली का ।

बना बनाकर रूप माधुरी
रखती हूँ नित प्रति सजनी !
पथ निहारते रम जाती है
रीते-मानस की रजनी ।

कैसी तो भोली सूरत है ?
कैसा किन्तु कठोर हृदय !
मुग्ध हमारे मन को तो भी
लगते हैं वे सरस सदय ।

सखि, कुछ जादू सा पढ़ती है
उनकी शरमीली आँखें।
नहीं बताओ तो कैसे वे
मनचीती कर कर राखें।

पूजा

मै हूं परदे में आयें
कह दे तू उनसे जाकर।
आंखें न कहीं मिल जायें
ढक लेने दे समझा कर।

री चिप्रा! तनिक ठहर तू
ले लूं फूलों की डाली।
पर अर्घ्य कहां देने को
खाली पूजा की थाली।

प्रेमाभिषिक्त वेदी पर
बिठलाऊं हृदय बिछाकर।
कर ले शुभ्रांशु का दीपक
आरती उतारूं जाकर।

मैं

मैं हूँ नील गगन का पक्षी
दूर देश है घर मेरा ।
मुक्त पवन-वाहन पर चढ़कर
देता हूँ जग का फेरा ।

हरित श्यामघन,वन,हिम गिरिवर
हैं मेरे विश्राम-सदन ।
शिशु,शशि, पुष्प, पराग राग में
बसा हुआ है मेरा मन ।

मेरे रम्य कलेवर में है
तारावलि अनन्त लोचन ।
अतुल अलौकिक प्राप्त हुआ है
जराहीन अक्षय यौवन ।

कादम्बिनी हिंडोला बनकर
मुझे झुलाती है निशिदिन ।
नभगंगा धोती प्रमुदित मन
ये पावन मम चरण नलिन ।

रूपसिन्धु के मोती चुगता हूँ
उस मानसरोवर पर ,
जो अगम्य है नहीं पहुँचते
जहाँ गिरा के वाहनवर ।

वातचक्र में पक्षों के
कंपन से उठते जग में ।
उल्काओं से बुझ-बुझकर रवि
धूमिल हो गिरते मग में ।

किन्तु चला ही जाता हूँ मैं
मन की करता रहता हूँ ।
निखिल विश्व की दया-मया को
रंच न निर पर सहता हूँ ।

दुख के शोक में

उस वसन्त में रख आया था
उच्छ्वासित चिन्तित सकरुण ।
जलती हुई चिता पर तेरी
अर्थी को ऐ हृदय सुमन !

आखिर समझ लिया था, जीवन
के वसन्त का अन्त हुआ ।
और कुछ नहीं अन्धकार ही
मेरे लिए अनन्त हुआ ।

सोचा था रो-रोकर जलमय
एक समुद्र बना दूंगा ।
आहों और विलापों के घन
से जीवन-जग छा दूंगा

पर विषाद-धन बांट लिया हा
हन्त ! प्रकृति के कण कण ने ।
मन्द मन्द बहते समीर ने,
फूलों ने, वन-उपवन ने ।

वारिद रोने लगे गिराकर
अयुत अश्रु मुक्तक माला ।
'कलकल' में कल्लोलिनी ने भी
छन्द व्यथा का रच डाला ।

'गुनगुन' में मलिन्द नित गाने
लगे शोक के गीत नये ।
निर्जनता ने छेड़े निःस्वन
सकरुण राग-विहाग नये ।

तारों ने 'झलमल' में मन की
व्यथा अपार सुना डाली ।
शोकाकुल हो गई मेदिनी
करके वहन निशा काली ।

निश्वासों आहों में सागर
ने भी वाष्पपुंज छोड़े ।
ओस-अश्रु से नहा रहे थे
नहीं लता-तरुवर थोड़े ।

गिरिश्रेणी निस्तब्ध होगई
प्रस्तर की प्रतिमा बनकर ।
उसी विषाद-गीत को मेरे
गाते हैं निर्झर झर झर ।

तू भी गया प्यार भी तेरा
सुख-दुख दोनों ही बीते ।
किसका लूं अवलम्ब हाय
हे मेरे उभय पार्श्व रीते ।

अतीत स्मृति

रजनी को झलमल होता जब
नभ में मन्द प्रकाश ,
उस अतीत की स्मृति ले आती
क्या क्या मेरे पास ।

नव सरोज का उर्मिराशि पर
चंचल नृत्य-विलास ।
अस्फुट अधरों से वह झरता
हुआ तुम्हारा हास ।

हिमगिरि के एकान्त शिखर के
निर्झर सा व्यापार ।
वे घड़ियाँ, वे दिन, वे रातें
वह अपना संसार ।

ऊँचे-नीचे वे दुर्गम पथ
नया-नया वह प्यार ।
भोले भावों से वह गूंथा
हुआ प्रणय का हार ।

लिपटी हुई लताएं तरु से
उड़ते हुए विहंग ।
नील गगन में इन्द्र धनुष के
प्यारे-प्यारे रंग ।

आश्रम के बाहर मृगछौनों की
सशंक सी दृष्टि ।
कमल-करों में चित्रकला की
अमर तुम्हारी सृष्टि !

सम्मुख सब आजाते है उस
गिरि - श्रेणी के साथ ।
वेणी के पुष्प-गुच्छ औ
कुशल तुम्हारे हाथ ।

किन्तु न जाने क्या गाते थे
मीठा-मीठा गान ।
विस्मृत सी, खोयी-सी, मन को
दुखा रही वह तान ।

आकर्षण

स्वप्नों की सेज बिछाकर
चांदनी शुभ्र थी सोई।
फूलों से अकथ कहानी
पर कहता था यह कोई—

"लेकर वीणा बैठी थी
पाषाण-खण्ड पर बाला।
नीरधि पूजा करता था
लहरों की अंजलि ला ला।

"मलयानिल के झोंके में
उसने तारों को छेड़ा।
पड़ गया अधर भँवरों में
हलकर नाविक का बेड़ा।

"जब कुसुम कली सी कोमल
फिरती थीं चपल उँगलियां।
चंचल नावें करती थीं
तब लहरों से रंगरलियां।

"मूर्छना-लोक में सहसा
जब गान हो चला निश्चल।
तब अर्धभाग नौका का
उदरस्थ कर चुका था जल।

"पर दृष्टि भ्रान्त नाविक की
उलझी थी जाकर तटपर ।
वह डूबा, लो वह डूबा,
वह डूब गया हा पटपर !"

आश्वासन

वार वार थी गई बताने
किन्तु न तुमसे कह पाई ।
अपने मन की मन में ही
लेकर मैं अपने घर आई ।

लज्जा ने, संकोच-शील ने
कुछ मन की द्विविधाओं ने,
इसी बहाने बारबार मिलने
की कुछ इच्छाओं ने,

विवश किया था, नहीं कह सकी
दोष न कुछ मेरा प्रियतम !
खोल कहूँगी अन्तरतम की
कभी मिलेंगे अब जब हम ।

अनुरोध

मुझे सुनाना हो तो प्रियतम
गाओ ऐसा गान ।
हो जाए अनुभूति जगत की
मेरे तन का प्राण ।

आहत के व्रण-बंधन से
छटपटा उठे यह देह ।
रोगी के क्रन्दन से कलकल
तरल बह चले स्नेह ।

दुखिया के दुख में कातर,
मिल जाये जीवन स्रोत ।
निरवलंब का अवलंबन हो
इन श्वासों का पोत ।

वञ्चिता

हर्षित हुई न निशा, उषा का
फैला कब आलोक।
मलिन प्रदीप लिये लेते हो
तिस पर भी हा शोक !

दुखिया का सर्वस्व तुम्हारा
होगा पहला ग्रास।
किसे ज्ञात था उस अदृश्य का
यह निष्ठुर उपहास।

जीर्ण कुटी का तम अनन्त यह
होगा कैसे दूर ?
कैसे बन्द द्वार का मुझको
पता चलेगा क्रूर ?

खोज सकूँगी कैसे अज्ञात
मैं निर्बल निरुपाय।
क्या पूजा के पत्रपुष्प भी
पड़े रहेंगे हाय !

परदा

नही मिला एकान्त कभी,
दिन-दिन गिनते बरसें बीती।
सध्या के उपरान्त अँधेरी,
बीत गई रातें रीती।

उस अतीत के क्षण क्षण में
आशा के कण कण अस्त हुआ
मन की सभी उमंगो का
मन में ही कार्य समस्त हुआ।

घूंघट का अन्तर दोनो को
अन्त समय तक शाप बना।
प्रेम-प्रसून खिला कोने में
वहीं होगया वह सपना!

वह हार

कहा था, सध्या के उपरान्त
मिलेंगे कुंज-भवन के तीर।
कलित कलियों से गूंथा हार,
मधुर आशा से हुई अधीर।

न आये किन्तु निठुर वे हाय '
रहा खूंटी पर लटका हार ।
हँस पड़ी कलियां मुझको देख
बन्द कर चली गई मैं द्वार।

रहस्यवादी

घड़ियों में युग का परिवर्तन
घट में सागर का भरना।
शुष्क कठोर शैलखण्डों का
वह चलना होकर झरना।

चिर असीमता का सीमा के
सांचे में आ ढल जाना
जग अनित्यता का सुन्दर
शाश्वत स्वरूप रख इठलाना।

रेखा लीन बिन्दु में होना
किरणों का शशि को पीना।
तड़ित-हास्य पर, असंख्यता का,
एक इकाई के जीना।

आजाना विराट् का कर में,
सुमन स्वर्ग का बन जाना।
सीपी का मोती में अपने
रूप-रेख गुण को पाना।

अणु में अखिल विश्व का बसना
स्वप्नों का हिम जम जाना।
उस रहस्यमय का कण-कण में
हँसना और सिहर जाना।

मन की आंखों से लखता है
मुक्त हृदय-वातायन कर।
जग में, अनिल अनल अवर में
विषम तान में समतास्वर।

वह है कौन—मनीषी, कवि
तक्षक, बुध, चित्रकार, शिल्पी,
हेमपात्र में ढालढाल कर
अनुभव-सुरा रहा जो पी?

वंचिता मां से

अयि ! मां क्या होगया तुम्हारे
कोमल शिशु को आज ?
किशलय से अधरों का क्योंकर
लुटा हुआ-सा साज ?

किसने म्लान खींच दी रेखा
उसके अरुण कपोलों पर ?
किसने मुहर लगादी है मां,
उसके तुतले बोलों पर ?

कौन छीन लेगया अचानक
हास्य - विभव अनमोल ?
किसने तरल लोचनो की वह
हर ली छवि मधु लोल ?

रेशम से केशों का गुच्छा
क्यों सोया निस्पन्द ?
मृदु मुसकान लूटने को क्या
डालेगा न कमन्द ?

चपल उँगलियां नहीं करेंगी
क्या फिर मौनालाप ?
अस्फुट कलियां बिखर जायँगी
हा यों ही चुपचाप !

धूल धूसरित हो न करेगा
क्या फिर गोद पवित्र ?
क्रूर करों ने मिटा दिया हा !
स्नेह-लोक का चित्र ।

था सुहाग की कल्पलता का
पारिजात अभिराम ,
स्वतः चाहता था विकास से
पूर्व अटल विश्राम ।

या पवित्रतम स्नेह-सुधा का
मन में समझ अपात्र ।
स्तब्ध निशा में तोड़ चला वह।
जग से बंधन मात्र ।

अयि मां, मुझे बताओगी क्या
इस रहस्य का हाल ?
क्यों मुरझाया पड़ा हुआ है
रम्य फूल सा लाल ?

स्मृति

आंखें आंखों में छिपकर
क्या जाने क्यों रोती हैं?
मथकर क्यों हृदय सरोवर ,
बरसा देती मोती हैं ।

निर्झर के सकरुण स्वर में
मिल जाने की आतुरता ।
कुञ्जों के मौन निलय में
लय होने की व्याकुलता ।

हँसते सुमनों से सुनतीं
रागिनी विषादित मन की ।
मुखरित उपवन से गुनती
नीरवता शून्य विजन की ।

तारावलियों की जगमग
नीहार शोक से छाई ।
कौमुदी-स्नात सुन्दरता
क्यों जाती है मुरझाई ?

स्वप्नों से अब न सिहातीं
ये मीन-मृगी की उपमा।
स्मृति में विस्मृत हो बैठीं,
अपलक प्रस्थापित-प्रतिमा।

चित्रांकण

जाने कौन भाव से मैंने
खींची थी वह रेखा ।
मेरी मधुर कल्पना को किस
दिव्यदृष्टि ने देखा ?

किस शकुन्तला की रचना में
रुचिर तूलिका मेरी
चली जारही थी विभोर किस
रूपराशि की प्रेरी ?

किस अमर चित्र के अंकन का
रसमय प्रयास था मेरा ?
क्यों मिटा दिया रे, बतला क्या
आता-जाता था तेरा ।

दुहिता के शोक में

मैंने कहा, सुना पर तुमने
किस दिन मेरे प्राण '
मन्द स्पन्दित दीपक का जब
होता था निर्वाण ।

अब प्राचीर तिमिर की उठकर
खड़ी हुई सब ओर ।
नभ से पृथ्वी तक दिगन्त में
जिसका ओर न छोर ।

दृश्य अदृश्य होगये सारे
नहीं किरण तक एक ।
क्यों तोड़ोगे रहने दो वह
निष्ठुर अपनी टेक ।

अन्धकार में सोने दो
मेरी बच्ची को मौन !
चिर-निद्रा के पास स्नेह का
कहो मूल्य ही कौन ?

जन्म लिया पर पा न सकी
आजन्म पिता का प्यार ।
वंचित शिशु के लिए तुम्हारा
यह निष्फल उपहार ।

नीले होठों पर रखते अब
सजल स्नेह की छाप ।
जीवन में क्यों छिपा लिया था
मधुर भाव चुपचाप ।

सदा सभीत रही जो लखकर,
वक्र तुम्हारी दृष्टि ।
अश्रुवृष्टि अब कर न सकेगी
प्रियतम, उसकी सृष्टि !

विरहिणी की दुनियाँ

अपने स्वप्न भिगोती हूं मैं
कर उस दिन की याद ।
धोती हूं अतीत के चुन चुन
मधुर मधुर रसवाद ।

उलट पुलट कर रखती हूं
अन्तर की अपनी चाह ।
बनी हुई हूं वाह आज मैं
एक आह की राह ।

कैसी सुन्दर सृष्टि सजी है
मेरे मन के बीच ।
भावों की गंगा से ले
जो चाहे प्यार उलीच ।

चखती हूं, रखती हूं, सजती-
बजती हूं दिन रात ।
अनगिन कामों में उलझी
रहती हूं साझ-प्रभात ।

विरह मुझे कर्तव्य बना है
सिखा रहा है सीख ।
द्वार-द्वार पर फिरूं मांगती
विश्व-प्रेम की भीख ।

पदार्पण

कितने पाटाम्बर डाले थे
गलियों में नित स्वागत को।
रही प्रतीक्षारत निशि-वासर
मनचीते अभ्यागत को।

पारिजात की वन्दनवार
कुसुम-करों से ले-ले कर।
गर्वित मन से सज्जित की थीं
मणि-निर्मित गृह-द्वारों पर।

मोती की लड़ियों के बदले
तारों की अनुपम माला।
चन्द्रकला के रुचिर सूत्र में
गूंथ सजाई थी शाला।

पांसुल पद-पद्मों से पावन
होगा हर्म्यविलास नहीं।
जीवनधन जगजीवन होंगे
यह भी था विश्वास नहीं।

पल पल करते वासर बीते,
वासर बीते, युग बीते ,
नलिन-नेत्र पर सतत हमारे
रहे अश्रुजल ही पीते ।

उष्ण वाष्प से स्निग्ध हुआ
कुछ गर्वग्राव यौवन-धन का ।
तब अपाग में लज्जित होने
लगा रूप चन्द्रानन का ।

दृग-पथ से आते-जाते थे
वे अबाध मंथर गति से ।
करुणा के शुचितम मन्दिर मे
प्रियतम शोभन रतिपति से ।

सन्देश

आशा के भग्न शिखर पर
दीपक यह कौन जलाता ?
टूटी वीणा को लेकर
पंचम स्वर कौन बजाता ?

उजड़ी शोभा में किसने
लाकर यह सुमन खिलाया ?
किसके विक्षिप्त हृदय में
यह भाव विपर्यय आया ?

कल था जो अब न रहा हूं
कह दे यह कोई जाकर ,
सूखा हूं तरस तरस कर
होगा क्या रस बरसाकर ?

सौंदय

बहती है सौंदर्य-सुधा उस
राजमार्ग के तटपर ।
जहां खड़ी भिक्षा को दुखिया
अचल मलिन बढ़ाकर ।

रूप कुरूप हुआ जाता है
उस शोभा के आगे ।
जहा अकिञ्चन के धन दो शिशु
सोते सोते जागे ।

सुन्दरता की सीमा देखो
उल्लंघित उस थल है ।
श्रमित कृषक के कृश शरीर से
जहा बरसता जल है ।

है अभिराम अमृत का झरना
उस अछूत के घर में ।
छूकर जिसे अपावन पावन
होते है क्षण भर में ।

बरस रही अविराम मोहनी
उस छाया के नीचे ।
पतिता के अनुताप कणों ने
जहां कमल-दल सींचे ।

है अनुपम वे विश्वविमोहन
उन्मत्तों की टोली ।
मातृभूमि को चूम रहीं जो
हँस-हँस खाकर गोली ।

है शोभा का सार झलकना
उस नीरव निर्जन में ।
जहां धूल में सुमन मिल गया
रखकर मन की मन में ।

उपेक्षित का प्रयास

इतनी ऊँची उठो गगन में
मेरे मन की आह !
छायापथ प्रज्ज्वलित हो उठे
मिले न उनको राह ।

विस्मृत की सुधि मात्र कराना
भर हो अपना लक्ष्य ।
फिर उनकी इच्छा वे जिनको
रक्खें नयन समक्ष

हमें बहुत है विरह-वेदना
यदि वह उनको भावे !
मलय सेज भी बिछा सकें
तो सुखमय निशा आवे '

यदि

यदि दो पंख दिये होते
उड़ आने को चरणों के पास।
हो जाता सर्वस्व हमारा
हृदय-कुसुम का सफल प्रयास!

हँसती हुई पखुरिया होती
झरता होता मृदु मकरन्द!
अर्पित होजाता चरणों में
पुष्पित जीवन का आनन्द!

उनका व्यवहार

मैंने दुख की बात कही थी
सखि, इतने दिन बाद,
तो भी उनका मन न पसीजा
वे कैसे मनुजाद!

कहीं हृदय भी है या उनकी
आँखें ही हैं काया!
रूप मात्र देखते हाय हैं
भाव न उनको भाया!

भाव देख लेते, फिर मुझको
ठुकरा देते आली!
रूप विधाता का मन मेरा
मेरी कौन कुचाली?

शूल-फूल

फूलों को चुननेवाले तू
शूलों को मत छूना।
शूलों पर सोने वालों को
देंगे वे सुख दूना।

जिनकी शैया शूल बने ये
उनको अमर सराहें।
उनके लिए कुसुम-कोशों में
कढ़तीं कोमल आहें।

महिमान्वित ये शूल हो चुके
बारबार चुभ उनके।
रस पीते, जीवन पाते हम
गा गाकर यश जिनके।

मुग्धा से

प्रेम-अजिर में खेलो रानी,
सर्व-सुहाते खेल ।
इस विभेद में सुधा कहा है
जीवन का रस मेल ।

भरलो, भरलो पात्र पूर्ण हो
रस हो सरस सकाल ।
रीते घट से कहा बुझेगी
तृष्णा की खर ज्वाल ?

छिन्न-तार वीणा से कैसे
फूटेंगे मृदु बोल ।
सुन्दर मिलन-क्षणो में भद्रे !
मधुरस तो लो घोल ।

पदार्पणवेला

आंसू की लड़ियों का हो मृदु
एक हार पहनाने को ।
संताप और उच्छ्वासों की
छाया हो तपन मिटाने को ।

ताजा हो रक्त छिड़कने को
घर में, आंगन में, राहों में,
मां-बहनों की हो व्यथा मिली
हिचकी सिसकीमय आहों में ।

पृथ्वी हो मुण्डों से मंडित
खंडित हो खंड-खंड आशा ।
फीके से मुख से कढ़ती हो
रह रहकर रुदनमयी भाषा ।

कृष्णा का चीर हाथ में हो
दु:शासन अत्याचारी के ।
भरते हों कुटिया, भवन, भुवन
अविरल विलाप से नारी के ।

वन्दिनी सशोका सीता की
बीतें रातें अशोकवन में ।
दुख की हो काली घटा घिरी
मन में, प्राणो में, जीवन में ।

लक्ष्मण से भाई मूर्छित हो
सूना हो सब घर-द्वार मुझे ।
बस उसी समय तुम आजाओ
लेने को दुख से पार हमें ।

हम तुम दोनो ही रोते हो
रोता हो लख संसार हमें ।
पग उठता एक बाद में हो
मिलता हो पहले प्यार हमें ।

जीवन संगीत

आओ आओ, उठो उठो,
जीवन की घड़ियो जागो तो।
आशाओं के नव्य प्रात में
दुख-प्रमाद को त्यागो तो।

बीत गई वन अवधि राम का
आना होगा जागो तो।
अन्तर-वीणा बजा-बजाकर
गाना होगा जागो तो।

प्राप्त हुआ संदेश मेघ का
नयन कपाट उघारो तो।
कुंकुम-केशर थाल सजालो
स्वागत स्वर उच्चारो तो।

निकल द्वार मे, पथ में चलकर
प्रिय को इधर पुकारो तो।
रोम-रोम को जला चुकी
उस विरह-ज्वाल को जागे तो।

हंसदूत बनकर आया है
अपना हृदय सँभालो तो ।
प्रेषित किया प्रिया ने मंजुल
प्रेम-निवेदन पा लो तो ।

अपने मन की भी कह डालो
अन्तर आज दिखा लो तो ।
सुख को दुख में पाल चुके हो
दुख सुख में नहला लो तो ।

प्रस्तुत विजयी पार्थ लक्ष्य
भेदनकर नभ में देखो तो ।
शौर्य और साहस की सुन्दर
मूर्ति एक अवरेखो तो ।

श्रीहत विरस विरोधी दल को
उधर मलिन मन पेखो तो ।
भाव-नदी कृष्णा के मुख पर
इधर उमड़ती देखो तो ।

सखि, वे कृष्ण और वे बातें
उनको आज विचारो तो ।
हरे-हरे कुजों, फिर जमुना-
जल को चल धिक्कारो तो ।

व्यर्थ इन्हीं आंखों में उनका
चित्र सुरम्य उतारो तो।
रोमरोम को नयन बनाकर
वह छविसिन्धु निहारो तो।

कविता का मंदिर

शापमुक्त होगया यक्ष अब
मेघ न ले जाते संदेश ।
यद्यपि अलका का वैसा ही
बना हुआ है रम्य प्रदेश ।

बहती वेत्रवती वैसी ही
हराभरा है मग पर्याप्त
उज्जयिनी के प्रासादों की वह
लीला पर हुई समाप्त ।

मंजु मालिनी-तट अरण्य में
पिता कण्व के आश्रम पास ।
कहा माधवी लता ? कहां वह
मृगछौनो का सरल विलास ?

ऋषिकन्या शकुन्तला का वह
अभिनय अब हो चुका व्यतीत ।
फिर दुष्यन्त भूप का अंकित
होगा वह न प्रणय-संगीत ।

दमयन्ती के उस विलाप का
था हो चुका उसी दिन अन्त।
प्रियतम के चरणों का जिस दिन
मिला अचानक प्रेम अनन्त॥

वन वृक्षों से, लता गुल्म से,
कौन कहेगा मन की बात?
व्यथित प्रियतमा की पीड़ा का
हाल होचुका नल को ज्ञात॥

कृष्णा की वेणी को कसकर
विदा होगया स्वर्ण सुयोग।
मुक्त-कुन्तला करने को अब
फिर न मिलेगा वह संयोग॥

लेकर कृष्ण न अब जायेंगे
फिर से कहीं सन्धि-प्रस्ताव।
फिर से कुरुक्षेत्र में होगा
नहीं युद्ध का आविर्भाव॥

पंचवटी के शिलाखण्ड पर,
गोदावरी नदी के तीर,
करुणामयी जानकी का वह
बरस चुका संचित दृग-नीर॥

विहगवृन्द दण्डकारण्य के
सुन रघुपति का मर्म विलाप ।
उछ्वासों से भूल भूलकर
व्यक्त कर चुके है संताप ॥

राधा के चरणों में अर्पित
मुरली का हो चुका गुमान ।
कुन्जकुटी की उत्सुकता का
दृश्य होगया है वह म्लान ॥

ब्रज बालाएँ गूँथ गूँथकर
चढ़ा चुकीं अपने उपहार ।
उन सब का सर्वस्व समर्पित
है हो चुका सहस्रों बार ॥

शिप्रा के उपकूलों पर जो
सुना गया सकरुण संगीत ।
मर्म क्रौञ्च का वही सुकवि की
वाणी में हो चुका प्रणीत ॥

वे रसस्रोत अभी जारी है
झरना से झरते दिनरात ।
संचित है उनमें वसुधा का
विभवरूप नव काव्य-प्रभात ॥

किन्तु बदल कर आज हमारे
हृदय होगये हैं विपरीत।
विस्मृत सा होगया उन्हें सब
जीवन का वह रम्य अतीत॥

अब तमाल के तले कहां सुन
पड़ती है वंशी की तान?
होता कहां प्रतीत हमें अब
यमुना का वैसा कलगान?

राजहंस पर होती है अब
नहीं महाकाव्यों की सृष्टि।
चन्द्रकिरण है वही किन्तु अब
करती नहीं सुधा की वृष्टि॥

है कविता का क्षेत्र हमारा
आज हुआ वह पर्णकुटीर।
जहां शीर्ण अंचल में माता
पोंछ चुकी है दृग का नीर॥

है कवित्वमय आज होरही
विधवा के आंसू की धार।
पुंछता हुआ भाल का सेंदुर
व्यक्त कर रहा वे उद्गार॥

आओ कविवर ! चलें वहां
उस कुटिया के लायें संदेश।
जहां रुग्ण का पड़ा हुआ है
नर-कंकाल मात्र अवशेष ॥

जिसके जीवन की संध्या में
गोधूली का शान्त निवास ।
पृष्ठ खोलकर करता अविरल
अंकित निज सकरुण इतिहास ॥

वाञ्छा

निर्झर बन कर झरा करो तुम
मेरे जीर्ण कुटी के तीर।
बरसा करो हृदय में मेरे
होकर श्यामल घन के नीर ॥

भूला करो कुञ्ज में हँस-हँस
बनकर रुचिर प्रसून नवीन।
मेरी विरह व्यथा-रजनी के
बना करो तुम शशि अमलीन ॥

मैं चकोर हो जाऊं प्रियतम,
तुम-सा चन्द्र निरखने को।
भ्रमरी बनी फिरूं उपवन की
सुमन सुमन रस चखने को।

कलिका बनकर चरण-प्रान्त की
रक्खूं सिर पर पावन धूल।
जल शैवालिनि होकर पालूं
प्रणय सरोवर का उपकूल ॥

मुझमें तुम, मै तुममें प्रभुवर !
हो जायें एकान्त विलीन ।
जग-जंजाल विराग राग से
रहें सर्वदा सतत हीन ॥

जीवन का अभिनन्दन

सुख-स्वप्नो की एक संपदा
मेरे पथ में भूल पड़ी हो ।
काटो की कुटिया में मेरी
लिये प्यार के फूल खड़ी हो ।

कैसा हृदय तुम्हारा रानी !
अधकार में स्वर्ण-किरण सा ।
तुम वरती हो उसे कि जिसको
त्याग चुका जग विदलित व्रण सा

बोलो, बोलो, प्रिये ! कौन-सा
रम्य प्रलोभन तुमने पाया ?
अपनी आंखों से जीवन मे
जो मैं अबतक देख न पाया ॥

तुम हो दिव्य दया की देवी
किन्तु यहा क्या काम तुम्हारा ?
जहा न सुख की एक रश्मि ने
कभी भूल कर किया पसारा ।

खड़ी विरल छाया में होती
धेनु मूंदकर नैन ।
तनिक दूर पर विमुख धूल में
करता बछुआ चैन ॥

पीछे खड़े खेत में गेहूँ
घर का लिये हुलास ।
अलसी के नीले फूलों से
झरता रम्य विलास ॥

झोली डाले सरल बालिका
फूलों सी अमलीन ।
बीन रही बैठी हरियाली
अपनी धुन में लीन ॥

लाकर मटर डाल देता है
भारी बोझ किसान ।
स्वागत को बाहर आजाती
कृषकवधू छविमान ॥

जली बाजरे की रोटी पर
रख सरसों का साग ।
खाने का रंगढंग कैसा है !
अहा सरल अनुराग ॥

आजाती दुहिता छलाग कर
कांटो की दीवार ।
हो जाता परिवार स्वयं तव
छोटा सा संसार ॥

चकित स्वत. अपनी रचना पर
होता है विधि मौन ।
कुटिया का रजकण बनने में
है गौरवहत कौन ?

विजय का मूल्य

"लील गया तूणीर तीर,
धोखा दे गई कटार !
अब तब में होने वाला है
सिर पर वज्र प्रहार ॥

यही सोचकर बढ़ा रहा था
छाती सम्मुख वीर ।
बिजली सी चमकी सेना में
खिंच सी गई लकीर ॥

मस्तक छिन्न-भिन्न अवयव
रिपु लोट गया तत्काल ।
पड़ी गले में लो योद्धा के
प्रेयसि की भुजमाल ॥

मुग्ध प्रेम, उत्साह, पुलक,
गौरव गरिमा आनन्द ।
बारी बारी चूम रहे थे
दोनों के मुखचन्द ॥

कहा वीर ने प्रियंवदा से—
"बस प्राणेश्वरि बाल !
अब इन भुज-दण्डों का देखो
रणकौशल विकराल ॥

"यदि तुम यों ही रहो सामने
शक्तिमूर्ति अभिराम ।
युद्ध, युद्ध हो युद्ध—न क्षणभर
का हो कहीं विराम ॥

"मथ डाले तो शत्रु सैन्य को
टूटी यही कटार ।
यही निषंग बने खर तीरों
का अक्षय भंडार ॥

हर-हर करके बढ़ा वीर धर
प्राणप्रिया का हाथ ।
पर हा उस दुर्दैव दुष्ट ने
दिया न उसका साथ ॥

वक्ष प्रिया का एक बाण ने
आकर किया विदीर्ण ।
गोदी में वह गिरी हताहत
एक लता सी शीर्ण ॥

पर पल में वह वीर दिखाई
पड़ा रुद्र का रूप ।
शत्रु-सैन्य के लिए भयंकर
लगा खोदने कूप ॥

किया पराजय शत्रु, जय-श्री
भी पाई अनमोल ।
किन्तु गले में पड़ न सकीं
वे कभी भुजाएँ गोल ॥

अन्तर्वेदना

पुरवाई के साथ कसक उठता
अन्तर का घाव सखी ।
मर मर कर जीती हूँ तो भी
होता किन्तु न स्राव सखी ॥

दुनियां को बतला देने में
अब क्या रहा दुराव सखी ।
अब जब मैं रह गई अकेली
और हमारा घाव सखी ॥

वह भी दिन था जब तन मन का
लगा दिया था दाव सखी ।
हार जीत में, जीत हार में,
थी तब दिल बहलाव सखी ॥

दुनिया थी रंगीन, और यह
नभ का नील तनाव सखी ।
ऊपर को उठता जाता था
मन का सुमधुर भाव सखी ॥

नीहारिका -

पृथ्वी मुझको स्वर्ग बनी थी
गृह नन्दनवन रूप सखी ।
दुख में सुख का भाव भरा था
कैसा एक अनूप सखी ॥

स्वप्न होगया आज हमारा
हाय ! अमृत का कूप सखी ।
ध्वान्त-सिन्धु में डूब चुकी वह
स्वच्छ सुनहली धूप सखी ॥

मिश्री मन म घोल रही थी
जो कोयल की कूक सखी ।
वही आज बनकर चुभती है
दुखित-हृदय की हूक सखी ॥

तुम सोचोगी है यह मेरे
यौवनमद की चूक सखी ।
मैं सुनती हूं, इस जग का है
केवल यही सलूक सखी ॥

किरण-करों से करता आकर
पहले शशि शृंगार सखी ।
औ' बनता अवतंस गले का
फिर तारों का हार सखी ॥

छन-छनकर सिर पर झरते है
प्यार और उपहार सखी ।
हन्त, अन्त में अंगारों से
होता सब कुछ क्षार सखी ॥

जिस दिन अपने आप बज उठा
था वीणा से राग सखी ।
तनिक छलक जाने से मदिरा
ने छोड़ा था झाग सखी ॥

बिन वसन्त फूलों में छाया
था जब स्वतः पराग सखी ।
सोचा था जगने वाला है
सोया अपना भाग सखी ॥

वही हुआ आए प्राणेश्वर
लेकर मृदु मनुहार सखी ।
चणचण, पलपल, विहँसविहँसकर
भेंट हुई गृह द्वार सखी ॥

ललित लाज थी बसी दृगों में
दिल में प्यार अपार सखी ।
रत्नप्रभा से जगमग था उस
दिन अपना संसार सखी ॥

नीहारिका

प्रथम मिलन में क्या जादू था
हुए नयन जब चार सखी।
तो क्षण-भर मैं रही मुग्ध-सी
सकी न तनिक सम्हार सखी॥

तन को, मन को और प्राण को
भूली मैं उस बार सखी।
कितना सत्य और सुन्दर-सा
था वह नश्वर प्यार सखी॥

पानी सा वह गया एक दिन
में ही सब आलोक सखी!
उस सपने की झलक कहां
फिर पाई कभी विलोक सखी॥

मुझ कोकी का प्राणसखा वह
कहां उड़ गया कोक सखी।
श्वासो के झूले में झूला
करता है अब शोक सखी॥

हम दोनो को विलग किया है,
है वह सच पाषाण सखी।
अन्तर में है बिंधा उसीका
तेज नुकीला बाण सखी॥

आह ! आज पा जाऊं जो मैं
प्रिय की कहीं कृपाण सखी ।
चुभन और पीड़ा से कर लूं
इन प्राणों का त्राण सखी ॥

परिचय

कवि की जिह्वा पर सोती हूं
सरस्वती की छाया बन ।
वारिद में बसती हूं होकर
चपला का दृढ़ आलिंगन ॥

अधरों में नित हँसती हूं,
मुसकानों में मुसकाती हूं।
बुलबुल की सुमधुर तानों में
थिरक थिरक कर गाती हूं॥

रम्य वनश्री हूं बसन्त की
अमराई की श्यामा हूं ।
निज सर्वस्व वार डाला था
मैं ही वह ब्रजवामा हूं ॥

सुमनो में सौरभ सरसाती
संध्या को लाली देती ।
प्यार सहित प्रभात को मैं ही
अंचल में लेकर सेती ॥

आशा की मैं मंजु किरण हूं
रमी हुई सबके मन में।
मैं आनन्द-सृष्टि करती हूं
दुख के नीरव निर्जन में॥

सुख, सौंदर्य, प्यार-वैभव की
हूं मैं वरदात्री देवी।
सुर-किन्नर-नर-नाग असुर सब
मेरे ही हैं पदसेवी॥

जहां चरण अंकित होते हैं
बन जाता है नन्दनवन।
नूपूर की झंकृति से मेरे
झंकृत है यह विश्वसदन॥

मेरी इच्छा से लालित हैं
जग की सब अभिलाषाएँ।
मुझ से ही जीवन पाती है
भीमाकार दुराशाएँ॥

मुझसे ही सम्पदा गगन ने
पाई है तारोंवाली।
स्मिति मेरी ही छाई है
होकर वसुधा पर हरियाली॥

अवगुण्ठन के दो नयनों की
प्यार-भरी भाषा हूँ मैं ।
हृदय-स्रोत से झर झर झरती
पगली प्रत्याशा हूँ म ।

मैं हूँ भक्ति भक्त के मन की
रागी के उर की माया ।
ज्ञानी को आलोक-राशि हूँ
जगन्निवास की हूँ जाया ॥

पतितपावन

मन्दिर के प्रांगण में भक्तों
की थी भीड़ अपार ।
धूप दीप नैवेद्य अर्घ्य थे
पूजा के उपचार ॥

सामगान से गूँज रहा था
पावन पुण्य प्रदेश ।
रजत किरण से नहा रहा था
वह सारा हृद्देश ॥

स्वर्णपात्र की दीपशिखा का
मन्द मलिन था वेश ।
किन्तु न लख पाता था कोई
उसके मन का क्लेश ॥

मूक विरावहीन झलमल में
उसका मर्मोच्छ्वास ।
इंगित का अनवरत कर रहा
था नित व्यर्थ प्रयास ॥

हाय दृष्टि-विभ्रम में सारा
हुआ पुजापा नष्ट ।
उन्मद, अज्ञ, अन्ध, आदर का
व्यर्थ होगया कष्ट ॥

सिंहासन पर थे न वहां
सर्वात्मरूप सर्वेश ।
शीर्ण कुटी में उन्हें लेगया
था अछूत का क्लेश ॥

शंखध्वनि में बसते हैं क्या
दीनबन्धु भगवान ?
तरस रहे हों त्राण के लिए
जब गरीब के प्राण ॥

क्षमा याचना

गाने का अनुरोध हुआ पर
हृदय कहां से लाऊँ वह ?
उजड़े उपवन में फिर से मैं
कैसे कली खिलाऊँ वह ॥

स्तब्ध निशा है, दिन सूना
जीवन की खाली प्याली है।
कोसों तक संध्या के अंचल
की धुँधली सी लाली है ॥

शीर्ण कुटी के बाहर वसुधा
में लहराता है क्रन्दन।
व्यथित आंसुओं से भरता है
पार्श्व देश का सदन-सदन ॥

कर लो बन्द झरोखे को।
मेरे गायन के प्रेमी आज
केवल सकरुण स्वर बजता है
अस्तव्यस्त होरहा साज ॥

आभार

प्रेम रुचिर है मेरा बाले !
रूप रुचिर है तेरा ।
हृदय रुचिर है उसका जो
है तेरा चारु चितेरा ॥

वाणी उसकी रुचिर प्रिये है
जिसने लेकर गाया ।
मेरा प्रणय-गीत सुन जिसको
तेरा जी भर आया ॥

उस कवि के कृतज्ञ हैं दोनों
मैं-तुम मेरी रानी ।
जिसकी वाणी ने प्रस्तुत की
अपनी मिलन कहानी ॥

जीवन का सार

हिलमिल खेलें धूप छांह में
जीवन के दो दिन हैं।
जल अंबर के मध्य धूम्रवत
श्वासों के पल-छिन हैं॥

कर लें, धर लें, विहर-सिहर लें,
फूलों से घर भर लें।
फिर रस-त्रास कहां होंगी
ये घड़ियां अचय करलें।

यह मध्यान्ह-मिलन जीवन में
अनुपम पुण्यस्थल है।
हृदय हृदय की भेंट करालें,
इसमें कितना बल है!

संसार

कैसी हैं ये संध्या देवी
सस्मिता उषा जिनकी अनुगत।
कैसी जीवन की विषम घड़ी।
है मृत्यु-पूतना जिसमें रत!

वैषम्य हलाहल पान किये
ये सूर्य-चन्द्र से रथी यहां।
दिन-रजनी का मेला देखो
छाया से गूंथी रश्मि जहाँ।

दुख पर सुख का परिधान तना
सुख के तन पर दुख की रेखा।
इस इन्द्रधनुष की रचना में
जग का यौवन खिलते देखा।

प्रश्न

तुम किसे याद कर
नयन-पात्र भरती हो ?
यह अश्रु-अर्घ्य अयि
सुमुखि किसे हरती हो ?

तुम लुटा रही हो
हार मोतियों के जो,
सो निधि है ऐसी
कौन जिसे वरती हो ?

तुम लिये चित्र हो
किसका उर-अन्तर में ?
तुम सदा मौन मन
किसे प्यार करती हो ?

अनुपम अनन्यता किसे
समर्पित वाले !
जीवन का भी जो
मोल नहीं धरती हो ।

सृष्टि और सृष्टा

किस प्रकृति पुरुष ने रचा जगत
इतना रुचिकर, इतना मधुमय।
विस्मयकर नभ, उन्नत गिरिवर,
विस्तृत वसुधा, अभिराम प्रलय॥

कलकल सरिता, झरझर निर्झर,
झलमल मंजुल तारक-दुकूल।
शशि रजत रूप, ज्वालामय रवि,
सागर अकूल, सुख मूल फूल॥

संध्या वंध्या, शुचितम ऊषा,
सुखदुखमय यह जीवन-प्रवाह।
बहता बहता जा रहा कहा,
इसके तल की है नहीं थाह।

इस सादि जगत का आदि कौन?
इस सान्त विश्व का अन्त कहां?
किसकी माया से निर्मित यह?
किसकी इच्छा का भास यहां?

वह सूत्र कौन जो ग्रथित किये
ये मणिमुक्ता में विविध रूप?
भावी के प्रांगण में सबकी
है बाट जोहता कौन कूप?

यह चिर-रहस्य, यह नित्य सत्य,
यह एक रूप, यह धूप-छांह।
यह अनस्तित्व अस्तित्वपूर्ण
रञ्जक है इसकी कौन चाह?

मानस में इसके राग रुचिर
इसका कर्तव्य विराग विषम।
अन्तर इसका रस-रास-रचित
इसका वपु केवल ज्योतित तम॥

जिससे पूछें, वह सुकवि कहां
कर सके निरूपण रूप रम्य।
उस अमृतपुत्र का, प्राण फूँककर,
धन्य हुआ जो जग प्रणम्य!

आत्मचर्चा

एक गीत गाया था मैंने
राग तुम्हीं थीं मेरी।
एक स्वप्न देखा था मैंने
जिसकी तुम्हीं चितेरी॥

रुचिर कल्पना बन जीवन में
मेरे तुम आई बाले!
मेंहदी सी रच गई हमारे
आलिंगन में रस ढाले॥

तुम मेरी आराध्य, तुम्हारे
रस-विष का मैं आराधक।
फूट न जायें छाले उर के
छलक न पाये प्रेम-चषक॥

मोह

कितना है मोह बताऊँ,
इस जीवन से प्राणेश्वर !
घड़ियों में जिसकी तुमने
बरसाया था रस-निर्झर ॥

होकर प्रसून लाये थे
जिसमें वसन्त-श्री प्यारी।
बन महक मधुर जीवन की
भर दी थी क्यारी-क्यारी ॥

कैसे मैं उसे बिसारूँ ?
कैसे मैं उसे भुलाऊँ ?
उस स्मृति-तट से मैं कैसे
जर्जर यह तरी हटाऊँ ?

नश्वरता

चिर निद्रा है, गहन निशा है,
है तम का अधिवास।
उठता जाता है पल पल पर
प्राणों का विश्वास॥

कब होगा प्रभात, जीवन का
फूटेगा आलोक?
नवस्फूर्ति से स्पन्दित होगा
मेरे मन का शोक॥

मिटा रही है धरा चिन्ह सब
देकर अपनी अंक।
जला, जला दे धधक धधककर
चिता अभीत अशंक॥

कहता नील वितान ओढ़कर
तारों का परिधान—
रूपराशि आ हो जा मुझमें
आकर अन्तर्द्धान॥

कौन लिखरहा है आंसू से
यह सकरुण इतिहास ?
उसे चुनौती देकर बहता है
यह पवन सहास ॥

धीरे बोलो—यह निसर्ग है
माया का षडयन्त्र ।
प्रतिपल जहां ध्वनित होता है
नाशक मारण मन्त्र ॥

कौन रहेगा, कौन बसेगा,
कौन हँसेगा, हाय !
रुदन ?—नहीं, वह तो बेचारा
है निरीह निरुपाय ॥

साक्षी

मीठी मीठी पीड़ा मन की,
आंखों का यह रंग सुरंग ।
अलस पलक की कहीं हमारी
निद्रा के झोकों का ढंग ॥

समझ न लें वे मतवालापन
साक्षी रहना ऐ प्याली !
चुपके कानो में कह देना—
"अबतक सदा रही खाली ॥"

महक न मदिरा आज उतरजा
आते होंगे वनमाली ।
देख, तुझे ही कहना होगा
"अब तक कभी नहीं ढाली ॥"

वर्जन

छुईमुई हूँ मैं सुकुमारी
धानपान से मेरे अंग ।
रस लेने का उधर तुम्हारा
मधुप बावरे उद्धत ढंग ॥

इस असीम अन्तर में कैसे
होगा जीवन का निर्वाह ?
असमय में ही जला रही है
मुझको अन्तरतम की दाह ॥

कण्टक सी कैसी लीला यह
फूलों के सहचर सुकुमार !
प्रेमप्रदर्शन कौन कहेगा ?
निष्ठुर, यह तो प्रेम-प्रहार ॥

मिलन-निशा

मिलन-निशा है आज, आज सखि,
भावों का मेला है।
कुसुम-कल्पनाओं को, मन का
छू लेता रेला है।

पल-पल, छिन छिन गिन गिन आई
चिर वांछित बेला है।
आज हृदय है और, और ही
जीवन की खेला है।

मिलन-निशा है आज, आज सखि
भावों का मेला है।

कानपुर के प्रति

पुण्यभूमि के राक्षस,
भारत के दुर्भाग्य ललाम।
शान्ति-कुंज जान्हवी-कूल पर
ऐ अशान्ति के धाम!

छल-प्रवंचना के वशिष्ठ,
ऐ विदेशियों के भाव!
पावन आर्यभूमि भारत के
वक्षस्थल के घाव!

ए दीनों के भक्षक,
पापो की प्रतिमा दुर्दान्त।
अत्याचार निपीड़ित जन के
ए पीड़क उद्भ्रान्त!

ऐ निरीह शोणित से
करनेवाले निज शृंगार।
ऐ विश्वास-विघातक
तुझको वारवार धिक्कार!

न है कलंकों की इति
तेरे, ऐ कलंक के रूप !
अपने ही रक्षक के भक्षक
ऐ विभीषिका-कूप !

किन शब्दों में धिक्कारूँ
किस वाणी से दूँ शाप ।
बरस पड़े समस्त नरकों का
तुझ पर ही अभिशाप !

किन्तु अधम कृत्यों का
तो भी होगा क्या प्रतिरोध ?
नहीं, जलाया करे तुझी को
तेरा दुष्ट विरोध ॥

विपन्नावस्था के उद्‌गार

सोया था आनन्द-सदन में
जागा तो यह रंक-विजन ।
हाय, नियति की रेखाओं का
अंक होगया प्रमुदित मन ॥

कैसा तो यह नील गगन है,
कैसी है शालीन धरा ?
अतल-अकूल जलधि है कैसा
निर्मम बीचि विलास भरा ॥

अभ्रंकश हिमाद्रिश्रेणी है
कैसी हृदय-विहीना-सी ?
उतर रही है कल कलोलिनी
कैसी निज सुख लीना-सी ?

आंख मूँदते हाय पोंछ दी
सबने अनुपम शिल्पकला ।
दो घड़ियों में शोक हमारा
सोने का संसार चला !

किरणमयी ऐ ! मुझे बता दे ,
उस छविवाला का वह पथ
गई जिधर से उधर ले चलूँ
तो मनोरथों का यह रथ ।

घुल जाने दे, खुल जाने दे,
जीवन की संकीर्ण गली ।
स्वर्ग-द्वार पर , पथरजकण पर
होने दे अवतीर्ण अली ।

चरण-चिन्ह-सोपान पार कर
झाँकी मिले , सुहाग मिले ।
इस साधना-सिक्त मंदिर में
जग को वह अनुराग मिले

जिसकी पूजा कर पाया था
सावित्री ने प्रियतम-धन !
यह छलमय संसार बना है
जिसके कारण नन्दनवन ।

दीपनिर्वाण

जीवन-मरुस्थल में

हिमकण-विन्दु-सा

हाय ! वह अचानक अयाचित ही आगया था,

स्वर्ग सुख लेकर ,

वसन्त-पुष्प-सा मृदुल

कोमल, ललाम, अभिराम शिशु भाग्यवान् !

सरस हुआ था रसहीन जग ,

क्षण-क्षण , विश्व की कठोरता

हाँ , कर्मरत जीवन भी

जीविका के द्वन्द सब

सहनीय हो गये थे ,

दुष्टग्रह सो गये थे

रात्रि के निविड़ सम

शून्य-गृह बीच दीप्तिमान हुआ देखकर

उज्ज्वल आलोकपुंज दीप अनुपम एक ।

नीड़ कर बस गये
आकर अचानक थे
कितने ?—असंख्य स्वर्ण-स्वप्न रम्य,
भूलकर मार्ग सब
उन्नत बरोनियों पै ,
मुग्ध मनोमंदिर में
मेरी चिर-संगिनी के ।
रात्रियाँ वे कैसी थीं सुहावनी , सुधांशुमयी ।
घुल घुल किरणों में
बरस रही थी सुधा
ओसकण गूँथते थे मोती चुन चुन कर
वेणी में निशा की गुपचुप कर प्रेमालाप !

गान में विहंगम के
आते थे प्रभात नव ,
पुष्पराशि —सज्जित
सलोने से, मनोहर से ।
आशा के रँगीले पंख
नील नभोमंडल में
विस्तृत भुवन छोड़
रंजित क्षितिज पार

फिर समृद्ध साथ होते ये प्रवाहित क्यों ?

गुदगुदी थी वह ?

उन्माद था ?

विलास था ?

यौवन का रस था मधुर ?

भव्य कल्पना का स्फटिक-निर्मित विशाल-सा भवन था ?

भक्ति शून्य ,

रिक्त हाथ ,

मन्द भाग्य ,

शुभ्र उत्सर्ग-भावना विहीन ,

मार्ग के भिखारी को

अपूर्व भाग्य भूषित

किया था किस भूल ने

उस विश्वेश्वर की ,

नाथ किसे ! दैव हा!

अक्षत- नैवेद्य नहीं ,

धर्म-धूप-दीप नहीं ,

थाली में पुजापा नहीं ,

अंजलि में पुष्प नहीं ,

ध्यान नहीं ,

धारणा, समाधि, तपभाव नहीं,

व्रत, नहीं,

नेम नहीं,

रिक्त-शून्य दलित वलित विश्वबंधन

विरस तिक्त जीवन में,

देव-वरदान तुल्य,

पावन परम पुण्य,

ललित-विलास-रम्य

मेरे देव ! पाया था खिलौना वह

किस स्वर्ण-योग में?

किस सत्कृत्य का

उपहार था वह, हाय !

भोले भोले तोतले सलोने मुख के वचन,

स्मित फुहार से,

समुद्रफेन से धवल,

क्षीर से सरस शुभ्र,

रत्नराशि से अमूल्य,

लुट गये, बिखर बिखर कर मिट गये

अनभिज्ञता में सब एक साथ,

मूल्य कुछ भी तो नहीं उनका लगा सका मैं।

चिन्ह नहीं अवशेष,

एक भी रहा है, हाय!

चित्रपट धुल गया,

कौन से अदृष्ट ने,

आकृति-प्रकृति सब

विस्मृत विलुप्त-प्राय

कर के, प्रहार किया कोपवज्र, हन्त हा!

नारी

चिरबंदिनि का आज विशेषण
तुमको कातर करता नारी !
अपने चिरसंगी मानव के
प्रति दोनों भ्रू वक्र तुम्हारी !

आरोपों के पृथुल हिमाचल
के नीचे तुम उसे कुचलतीं।
सांस-सांस में रही युगों से
जिसमें आग तुम्हारी जलती।

तुम प्रतिहिंसा-लीन आज
विद्रोह रचाये रोम-रोम में।
तुम रुद्रा भैरवि कराल बन
हो ताण्डवरत विश्व व्योम में,

अपने चारों ओर देखतीं तुम
कारा, बंधन, आवेष्टन।
संशय के विष से विषाक्त हैं
आज तुम्हारे दोनों लोचन !

घृणित स्वार्थ की गंध कहाँ से
तुमने नंदनवन में पाई ?
दुश्चिन्ताओं की चिनगारी
मन में किसने आज जगाई ?

तुम मिथ्या भय से भीता हो
गृह स्वामिनि, सर्वेश्वरि, मानों।
जीवनसहचरि ! व्यर्थ बहक कर
गृहजीवन पर तीर न तानों।

याद करो वह गत अतीत, वे
शैल-कन्दरा, वे निर्जन वन।
फिर याद करो वह हिंस्र-सृष्टि,
वह कुश-शैया, वे अजिन-वसन।

हिम, आतप, वर्षा के वे दिन
वह भू-कर्षन, उटज-प्रसाधन।
याद करो वह अंधकार-युग
वह नैसर्गिक कार्य-विभाजन।

याद करो जब पर्णकुटी में,
स्वेच्छा से रहना चाहा था।
याद करो जब व्याघ्रचर्म के
लिए हमें तुमने थाहा था।

सदियों पर सदिया, युग पर युग,
याद करो तो कैसे बीते !
इसी तुम्हारे मानव ने क्या नहीं
तुम्हारे हित रण जीते ?

यह निर्बन्ध, निरंकुश प्राणी
बंधनग्रस्त हुआ क्यों देवी ?
क्यो अंजाल लपेटा उसने
जो स्वतंत्रता का चिर सेवी ?

प्रथम मिलन के उस मधु क्षण से
क्या वह नहीं तुम्हारा सेवक ?
चिरविश्वासी देवि ! आज ही
तुमको कैसे हुआ प्रवंचक

क्या चिरजीवन का मधु-संचय
उसने अपने लिए किया है ?
क्या चरणों में नहीं तुम्हारे
उसने कण-कण होम दिया है ?

खड़े किये क्या नहीं तुम्हारे
लिए ताज हैं उसने रानी !
स्वर्णमूर्ति गढ़कर क्या उसने
नहीं तुम्हारी महिमा मानी ?

अवगुंठन में रहकर भी कब
रहीं हृदय-मंदिर के बाहर ?
स्वर्ण-मेखला में विजड़ित भी
तुम स्वच्छन्दचारिणी भूपर।

घर–घर में तुम नूरजहाँ होकर
शासन का सूत्र हिलातीं।
मानव के सौभाग्य लेख लिखतीं,
लिखकर फिर स्वयं मिटातीं।

महिमा के जो स्वर्ण-कलश ले
खड़ी सभ्यता की दीवारें।
वे नर-नारी के कृतित्व की
हैं सुन्दरतर दृढ़ मीनारें।

हम दोनों की सहचरता में
जन्मी हैं सब शिल्प-कलाएं।
क्षुद्र महान सभी कृतियों में
उभरी हाथों की रेखाएं।

तुम अर्धांग पुरुष का देवी,
तुम अर्धांग सृष्टि का नारी !
मानव तक ही कब सीमित है
यह विस्तृत भूमंडल भारी ?

अपने से बाहर भी नारी का
तुमने क्या रूप निहारा ?
नर के बिना कहाँ नारी ने
जीवन का विस्तार पसारा ?

वन्दनीय मातृत्व साथ में
तुम अपने लेकर आई हो।
त्याग, तपस्या, करुणा संयम
की मृदु छवि लपेट लाई हो।

चिरकृतज्ञ नर है नारी का,
चिरकृतज्ञ नारी है नर की।
एक हाथ की नहीं सृष्टि है
यह जीवन के अभ्यंतर की।

यदि तुमको है यही इष्ट
हम तुम दोनों लें और और पथ।
साथ साथ रह चुके बहुत अब
चलें विरुद्ध दिशाओं को रथ।

प्रतिद्वन्दिनी बनो तुम नर की,
अधिकारों को तुम अपनाओ।
उलट-पुलट कर दो जीवन को
एक नया संसार बसाओ।

नरनारी में होड़ मची हो
जीवन-व्यापी हो संघर्ष ।
चलो, तुम्हारी इच्छा में है
मानव का सहयोग सहर्ष !

प्रेम या अभिशाप

उन घड़ियों को आग लगे जब
हुआ अचानक दर्शन तेरा,
सोने का संसार मिल गया
री, तब से मिट्टी में मेरा।

स्वप्नों की वासन्ती छाया
ज्वार उठाती आई मन में,
कहाँ गई, वे मादक रातें
भर लाईं थीं मधु चुंबन में!

फूलों, पत्तों, द्रुम, वल्लरियों
में फूले थे भाव हृदय के,
निर्झर के कलकल में गायन
थे जीवन की सुमधुर लय के।

ऊषा स्वर्ण लुटाती आती
संध्या जाती राग रचाये।
ऐसी थी एकाकी दुनियाँ
जिसमें यौवन के दिन आये।

विधि ने तो वरदान मान कर
तुम्हें सहेजा था हे बाले!
किन्तु पड़ गये उसी समय से
यहाँ अचानक दिल में छाले।

आग लगाने लगी चाँदनी,
सौरभ जी में शूल चुभाने।
चन्द्र-करों को बाँट दिये हैं
तुमने तीखे शर अनजाने।

इन्द्रधनुष का चीर ओढ़ कर
तुमने हृदय चीर डाला है।
मुझसे आज पूछती हो वह
कहाँ प्रेम की वरमाला है?

चूरचूर होगया हृदय जब
तारतार हो बिखरी आशा।
मृगमरीचिका-सी तब फिर फिर,
बढ़ा रही हो प्रेम -पिपासा।

कोमल तन में पत्थर-सा मन
कैसा विषम विरोध तुम्हारा?
रहे तड़पता आहत मानस
गिरे न एक अश्रु भी खारा।

तुमको पाकर भी कब मैंने
प्रेम तुम्हारा पाया बाले ?
भीषण आग लगा कर भी अब
बैठी हो अवगुंठन डाले !

भारत गीत

नदियो का है देश हमारा
यहीं हंस होते है।
यहीं ओढ़कर हिम की चादर
शैल शिखर सोते हैं।

किरणों का किरीट माथे पर
यहीं वृक्ष धरते हैं।
पुष्पराशि से लता-कुंज सब
यहीं गोद भरते हैं।

झरनो के धारा-प्रपात में
करतीं स्नान शिलाएँ।
यहीं बैठ दो घड़ी जगत से
हम मन प्राण जुड़ायें।

ऋषि-मुनियो की पुण्यभूमि यह
मृग-मोरो का घर है
थल-थल मन्दिर,प्रति-मन्दिर शुचि
लिये देवता वर है।

वट-पीपल की शीतल छाया
घर - घर द्वारे - द्वारे ।
करती है आतिथ्य अनोखा
शाखा - कर विस्तारे ।

सामगान था हुआ यहीं पर
सोमपान कर - करके ।
इसी देश के कंकड़-पत्थर
से गंगाजल ढरके ।

उपनिषदों की इसी भूमि में
धर्म-कर्म सब फूले ।
संस्कृति झूली यहीं डालकर
ऊँचे ऊँचे झूले ।

मातृभूमि का गौरव गिरि - सा
वेद - पुराण - पुरातन ।
जिसके हृदय-स्रोत से कलकल
बहता अविरत जीवन ।

बन्दी की आह

कभी तुम्हारी वेणी में जो
गूंथे थे दो फूल प्रिये !
वे ही आज हृदय में चुभते
होकर तीखे शूल प्रिये !

कौन जानता था जीवन में
आयेंगे ये दिवस प्रिये !
तुम सागर के पार बसोगी
हम तड़पेंगे विवश प्रिये !

जिन हाथों ने किया तुम्हारे
मेंहदी का उपचार प्रिये !
उन हाथों में आज बेड़ियों
का है भारी भार प्रिये !

ये अभेद्य प्राचीरें कारागृह
का यह संसार प्रिये !
एकाकी, बस एकाकी है,
यहाँ न कोई द्वार प्रिये !

ला सकती संदेश किरण तक
नहीं तुम्हारा यहाँ प्रिये !
मन की मन में ही अरमानें
मिट जाने दो वहाँ प्रिये !

कभी भाग्य जागा तो हम तुम,
भेंटेंगे भर अंक प्रिये ,
मेरी हो तो इसी तंतु पर
बैठो तुम निश्शंक प्रिये !

: ३ :

मोह निवारण

हाय, एक दिन ऐसा होगा
तीर त्याग कर दूर बहेगी—
यह तरंगिनी, स्वर्णलता भी
नहीं वृक्ष का प्यार सहेगी ।

इस झुरमुट में हृदय खोलकर
गानेवाली यहाँ न होंगी
ये बुलबुल, तितली ये झीने
पंखों वाली मधुरस भोगी ।

इन गलियों में रुनुकझुनुक कर
फिरनेवाली ये बालाएँ
कहा रहेंगी ? झर जायेंगी
मनोहारिणी ये कलिकाएँ ।

ये पनघट, खलिहान और ये
दोनो ही में घास उगेगी ।
गिरिवर की सोई चट्टानों में
प्राणों की प्यास जगेगी ।

सुख के घर में शोक बसेगा
पथिक बनेगा यह अधिवासी।
इस मरघट में साज सजेंगे
जहां छा रही घोर उदासी।

यह परिवर्तन ही जीवन है
सृष्टि इसी के रस को पीती।
इसीलिए तो मरमर कर भी
नित्य निरन्तर है वह जीती।

स्वप्न

स्वप्नो का आहार चाहिए
स्वप्नों का जल पीने को।
स्वप्नों की धरती बसने को
स्वप्नो का पट सीने को।

स्वप्नों का मधुपान, स्वप्न
की सुन्दर दुनियां रहने को!
स्वप्नों की उर्मिल सरिता हो
जब जी चाहे बहने को।

स्वप्न, स्वप्न हों—मधुर रेशमी
स्वप्न जगत में जीने को।
स्वप्नों की संगीत-सुधा हो
ढाल-ढाल कर पीने को।

स्वप्नों के तृण-तृण से निर्मित
नीड़ विश्व के कोने में।
स्वप्न हँसी में भूल रहे हो
स्वप्न हमारे रोने में।

सांस सांस में नव नव स्वप्नों
की बयार के झोंके हों ।
वासन्ती स्वप्नों के बादल
जीवन का पथ रोके हों ।

जल-थल भू-अंबर में श्री-मुख
महिमा के पद-चिन्ह जड़े ।
स्वप्नों से प्रेरित हैं, स्वप्नों
की माया से प्राण पड़े ।

स्वप्नों की सीपी से वसुधा
ने अगणित मोती पाये ।
स्वप्नो की लहरों से मानव
का उर-सागर लहराये ।

खोया बचपन

मेरे बचपन के दृश्य, सजीवन बनो तुम,
पतझड़ में पावस-मेघ-वितान तनो तुम,
इस विस्मृति-पट को भेद प्रकाश छनो तुम
यह चिरसंतापज हाहाकार हनो तुम,

क्षण भर के मेरे रुचिर विराम बिराजो।
आओ जीवन में सरस सुधा-सुख साजो।

गृह यही पुरातन है पुरखों का मेरा।
माँ और तात का यही मनोज्ञ बसेरा।
मेरी क्रीड़ा को प्रथम इसी ने हेरा।
है मेरा यह मृदु भाव इसी का प्रेरा।

मैं इसमें ही अवतरी, इसी में खेली।
इसमें ही बिकसी जीवन-जटिल पहेली।

भूली बातों का चित्र हमारा घर है।
बीती यादों का मित्र हमारा घर है।
घटनावलियों का दृश्य सजीव अमर है।
अनगिन लड़ियों का केन्द्र परम सुन्दर है।

विजड़ित है इससे भव्य भावना-ढेरी।
अंकित हैं इसमें कथा-कहानी मेरी।

सरिता का थोड़ी दूर मनोरम तट है।
कंकण-किंकिण-रव-रम्य उधर पनघट है।
वंशीवट सा ही सघन सजीला वट है।
होता सखियों का जहां नित्य जमघट है।

चिरपरिचित वह अभिराम क्षितिज का घेरा।
भावों का पंछी जहां विचरता मेरा।

सखियो, वे विसरे गीत आज फिर गायें।
उलझे वे रेशम—तंतुजाल सुरझायें।
बचपन के अपने दिवस तनिक फिर आयें!
मानस की मुरझी स्नेह-लता लहरायें।

हो कुसुम-चयन वह और वही अमराई!
गूंथें माला कुछ देर वही मनभाई।

सरिते, तुम वहती चली जा रही, ठहरो।
सुनलो रुक कर दो घड़ी बाद में लहरो।
शीतल जल के कुछ बूंद इधर भी छहरो।
अपनी धुन में फिर निरत भले ही लहरो।

मानस की हरलो तपन, हृदय की पीड़ा।
फिर करो सतत स्वच्छन्द लाड़िली क्रीड़ा।

मै आई हूँ तट-ओर लिए घट खाली ।
तू चली जा रही लीन आपमें आली !
छाई कछार के कुज-कुंज हरियाली ।
बरसी फूलों के पात-पात पर लाली ।

जीते हैं पीकर नीर-कीर द्रुमशायी ।
हरते हैं श्रम की भीर पुष्परसपायी ।

सखियों का सुखमय साथ हंस से पूरा ।
तेरा तट क्रीड़ास्थान बड़ा है रूरा ।
बनता है आकर हेम यहां पर घूरा ।
होता है गर्व-ग्राव स्वयं ही चूरा ।

यह पुण्यधाम है रुचिर तपोवन आहा !
तब तो देवों ने मेरा भाग्य सराहा ।

मेरे बचपन की सखी कोकिला ! बोलो ।
रसमय वाणी में तुम्हीं आज रस घोलो ।
खींचे अन्तर के तार प्यार से खोलो ।
दुखभार नेक तो हृदय-तुला पर तोलो ।

देखो मैं कितनी दूर हाय वह आई ।
तुम खड़ी उधर, मैं इधर, बीच में खाई ।

ऐ डगर साकरी, तुझे याद वे दिन हैं ।
तेरे परिचित वैसे ही, उभय पुलिन हैं ।

हाँ, उसी भांति तो चरते दूब हरिन हैं।
नीड़ों से खग शिशु झाँक रहे अनगिन हैं।

शुकपिक खोतों ने कढ़-कढ़ पंख पसारे।
उड़ते उड़ते जा रहे अरण्य-किनारे।

पर हाय, कहाँ वे आज हमारे दिन हैं ?
वे कहाँ हमारे पाले हुए हरिन हैं ?
गल गये अश्रु बन दोनों नयन-नलिन हैं।
जो कुछ है बचपन के वे बीते छिन हैं।

वह सोने का संसार हमारा खोया।
हा ! सूख गई पथ में ही जीवन-तोया।

वह वृद्धा दादी कहाँ, कहाँ वह मैया ?
वह कहाँ पड़ोसिन डगमग-जीवन-नैया ?
वह कहा तृणों से निर्मित कृषक-मड़ैया ?
है जहाँ वसन्ती फूली फूल कटैया।

जीवन प्रवाह है वही न पर वे लहरें।
आँखों से बूँदें अनायास ही छहरें।

मैं खोल रही हूँ स्मृतियों की जो चादर,
हैं तार तार में उसके लिपटी मृदुतर
झाँकी बचपन के मधुर दिनों की सुखकर,
धीरज पर इतना कहाँ कि सबको चुनकर

मैं सजा-सजा कर धरूँ जगत के आगे।
कैसे अंशुक ले बुनूँ शीर्ण हैं धागे?

तारों से है नभ जड़ा, रैनि अँधियारी।
गौरव अतीत का विभव किन्तु अब क्या री!
जो मैं सहेज कर धरूं संपदा सारी।
वह स्वप्न हो गई रंगिनि केशर-क्यारी।

मैं आज रंकिनी अंचल रिक्त पसारे।
रत्नाकर के तट खड़ी रत्न सब हारे।

कल ही तो था आकाश हमारा नीला।
कल ही तो आँखों देखी विद्युत् लीला।
सूखा है अंचल कहाँ स्नेह से गीला?
थामे थी जिसको प्यारी सखी सुशीला।

वह इन्द्रधनुष से रंगा हमारा शैशव।
चुपके चुपके वह हाय रम गया है कब?

मैं स्नेह-वंचिता, प्रेम-वंचिता नारी।
मैं रूपराशि-वंचिता परम दुखियारी।
मैं लुटी हुई हूँ वह वसन्त-फुलवारी।
मुझमें संसृति की विकल वेदना सारी।

हैं कसक रही जो नित्य शूल बन मेरे।
मैं सराबोर, वे मुझे चतुर्दिक घेरे।

मैं दीपशिखा हूँ एक जल रही ज्वाला।
मैं हूँ कर्मों की लीक कठोर कराला।
मैं हूँ जीवन सर्वस्व-वंचिता बाला।
जिसकी कुटिया में रंच न हाय उजाला।

मैं घोर घाम में तपी हुई हूँ व्याली।
मैं तमोराशि हूँ निशा सिसकती काली।

कुहुकनि माया ने बुना जाल है कैसा!
कल्पित यथार्थ से भिन्न हाय है कैसा!
है प्रेय-प्राप्त-वैषम्य मात्र ही ऐसा
मेरे जीवन का गीत-गान है जैसा!

लिख लिखकर सब धो दिया शेष अब क्या री!
है जटाजाल-सी जटिल कर्म-कंथा री!

कैसी विडंबना हाय भाग्य को घेरे।
इन नयनों ने ही स्वप्न रेशमी हेरे।
वे कहाँ अरे परियों के चित्र-चितेरे।
वे कहाँ तूलिका-लग्न भाव हैं मेरे?

उठ चलो सुमुखि, कुछ दूर उधर हो आयें।
हैं जहाँ विटप से लिपटी ललित लताएँ।

जब सूख चला रस-स्रोत आज जीवन का,
छाया कुहरा-सा यहाँ निराट विजन का,

तब लखती हूँ मैं मधुर दृश्य उस दिन का
दर्शन है कितना नव्य भव्य बचपन का ।

है हुई आज ही तो कृतार्थ यह काया ।
मैंने भी लोचन लाभ आज ही पाया ।